एक पत्थर और कुछ फूल

Ek pathar Aur Kuch Phool.

Anil kumar

अनिल कुमार
9419284285

प्रकाशन वर्ष :– 2011

प्रथम संस्करण :– 500

मूल्य :– ₹ 200/–

कम्प्यूटर कम्पोज़िंग:– शास्त्री प्रिंटर्ज़

मुद्रक :– शास्त्री प्रिंटर्ज़, मुट्ठी, जम्मू।

दूरभाष :– 0191.2598050, 9419227263

—: समर्पण :—

सभी सहृदय हृदयों

के प्रति

जो कवित्व और. कविता

को

समझते हैं।

धन्यवाद

उन सभी का जिन्होंने इस कृति को प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहन के साथ–साथ मार्ग प्रशस्त किया।

कवि की लेखनी से

विचार हृदय में पनपते हैं परंतु, एक सहृदय के हृदय में पनपने वाले विचार उन भावों पर आश्रित होते हैं जो हृदय के अतल अंतःकरण में उपस्थित होकर अपनी अनुभूति कराते हैं यह विचार एक सहृदय कवि के हृदय से कविता का रूप ग्रहण कर प्रकट होते हैं।

विचार बंधे नहीं होते वह हृदय के उन्मुक्त गगन में स्वच्छंद विचरण करते हैं और प्रकट होने के लिए मार्ग खोजते हैं। मेरे हृदय में पनपने वाले भावों ने कविता का रूप ग्रहण कर प्रकट होना सहज समझा। प्रस्तुत प्रस्तुति इसी प्रयास का परिणाम है।

प्रस्तुत कृति के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में अधिकतर कविताएँ उस अदृश्य के प्रति समर्पित हैं जिसके कारण हम इस दृश्य जगत का हिस्सा हैं। दूसरे भाग की कविताएँ मुक्त छंद में हैं और कई तरह के भावों, विचारों और कल्पनाओं को संजोए हुए हैं। तीसरे भाग में उर्दू भाषा में लिखी गई गज़ले हैं (जिनकी लिपि देवनागरी भी रखी गई है।)

यह विशाल ब्रह्मांड जो अणु स्तर से प्रारंभ होकर विशाल आकाश गंगाओं तक फैला हुआ है और किस तरह यह सारी प्रकृति सुचारू रूप से चलायमान है यह सौंदर्य सदैव मुझे आकर्षित करता रहा और इस दृश्य जगत से उस विशाल कल्पना से परे व्यक्तित्व तक जिसे हम प्राप्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं कर सकते जानने की आकांक्षा सदैव मन में आती रही तभी तो मैं लिख पाया।

तृतीय नेत्र का मार्ग पकड़ कर
अंतर्मन में पहुँच घुमड़ कर

तड़ित दामिनी सदृश बनकर
कौंध–कौंध कर जाता है
है किसका सौंदर्य अद्भुत अद्वितीय
जो विभोर मुझे कर जाता है।

व्यक्ति इस दृश्य जगत में आँखे खोलता है और आस–पास जनसमूह के साथ जीवन भर निभना पड़ता है। कई तरह की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। मानव समाज में जीता है एक दूसरे से सटा हुआ लेकिन बटा हुआ।

यूँ तो मानव सामाजिक प्राणि है
लेकिन मनुष्य के/सामाजिक होने में/ हानि है
क्योंकि/ समाज बटा है
धर्म के आधार पर/ संप्रदाय के आधार पर/
जाति के आधार पर/ प्रजाति के आधार पर
....
मनुष्यों का रेला है/विचारों का झमेला है
कहीं धार्मिक आधार है/धर्म एक है तो जाति का
व्यापार है/धर्म और जाति एक है/ तो भाषा का
बंध है/तीनों एक हैं तो/ पूंजीपति और
समाजवाद/ का द्वंद्व है।

उर्दू भाषा में 'गज़ल' का जो स्वरूप है उस में जिस तरह के विचारों को प्रस्तुत किया जा सकता है वैसा किसी अन्य जगह कर पाना कठिन लगता है। जैसे :–

गुलशन में है बहार और गुल हैं बेहिसाब
लेकिन यह बाग है यहाँ कोई बुलबुल नहीं गाती
वो तो करते हैं वादा ख्वाबों में आने का
पर इश्क में कम्बख़्त हमें नींद नहीं आती

या

हमारी मक्तूवियत तुम्हें फ़साना लगता है

हमें तो हिजाब में कैद सारा ज़माना लगता है

और जब से देखा है नूर–ए–इलाही या रब

अब तो अपना चेहरा बेगाना लगता है

अतः कुछ ऐसी कल्पनाएँ, भाव–विचार उर्दू गज़लों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अभी कुछ ही गज़लें इस माला में पिरो पाया हूँ। आने वाले समय में ईश्वर इच्छा से यदि संभव हो पाया तो और रचनाएँ सहृदय पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की जा सकेंगी।

पुस्तक के विषय में (वक्तव्य)

अनादि काल से ही कविता लिखना चलता आ रहा है इस कारण कविता की मान्यताओं में अनेक प्रकार का समावेश रहा है। काल में जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, समय में परिवर्तन हुआ, विचारों की प्रखरता एवं विद्वानों व कवियों के निरन्तर चिन्तन से मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ फलतः कविता जैसे वट–वृक्ष की शाखाएँ–प्रशाखाएँ बढ़ती चली गईं जिस कारण आधुनिक कविता का जन्म हुआ। श्री अनिल जी भी आधुनिक युग के कवियों में से एक हैं जिन्होंने इस काव्य संग्रह को प्रकाश में लाने के समय में नये तथ्य और आयाम जोड़े हैं। इस प्रयास में उन्होंने दिन–रात परिश्रम करके काव्य संग्रह तैयार किया है।

इस कृति को तीन भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में प्रकृति प्रेम में समर्पित अदृश्य भाव प्रकटते हैं जो बहुत ही भाव विभोर करने वाले है। जैसे :–

मैं धारा जल की कल–कल निर्झर
आतुर जलधि समाने को।
तुम बाँध के बाँधों में गति को
क्यों लगे इसे उलझाने को।।

दूर जगत से किसी कंदरा में
जा कर ध्यान लगा लूँ मैं।
त्याग असत्य से इस बंधन को
सत्य सृष्टि अपना लूँ मैं।।
मन सारथि क्यों उकसाते मुझको
कुरुक्षेत्र में अड़ जाने को।
मैं धारा जल की कल–कल निर्झर..........

दूसरे भाग में मुक्त छंद की कविताएँ हैं जिन से कई कल्पनाओं

और विचारों का प्रकाट्य रूप दिखता है। जैसे :–

पूँजीपति और समाजवाद
का द्वन्द्व है
न बदला है
न बदलेगा
सदियों से चला है
कब तक चलेगा
सभी मूक दर्शक हैं
जितना जितना पेट है
उतने–उतने भक्षक हैं
मैं भी पड़ा हूँ
चौराहे पर खड़ा हूँ
शायद पत्थर हूँ।

तथा तीसरे खण्ड में उर्दू की गज़लों को देवनागरी लिपि में भी पिरोया गया है जैसे :–

मेरे इश्क की मुझ को सज़ा देता है
मेरे दर्द को वो गज़ल बना देता है
मैं तो ठहरना चाहता हूँ अब किसी मोड़ पै
हर शब इक नया फ़रमान सुना देता है।।

सृजनात्मक एवं रचनात्मक गुणों के विकास में एक कवि का महत्वपूर्ण स्थान होता है और इस के माध्यम से रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त होने की पाठकों को प्रेरणा मिलती है।

इसी प्रकार इस काव्य संग्रह में अनिल जी ने बड़े सुन्दर एवं सुचारू रूप से विभिन्न छंदो का उल्लेख किया है जो बहुत मार्मिक, सरल एवं रोचक हैं तथा पद्यपिपासु व्यक्तियों को आकर्षित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आशा है इस छोटी–सी पुस्तक में पाठक अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा
रिसर्च ऑफिसर (S.I.E. Jammu)

विषय सूची

क्रमांक	सूची	पृष्ठ संख्या

भाग–3

भाग—1

क्यों मधुवन पास बुलाता है

मैं तोड़ चुका बंधन पुराने,
स्पंदन न क्रंदन अनजाने,
फिर भी अज्ञात कोई मुझको
पक्षी समझ जाल फैलाता है,
मैं अनंत दिशा का राही हूँ,
फिर भी जाने क्यों मुझको
यह मधुवन पास बुलाता है।

चला जगत व्यवहार जिधर
मैं उधर चलूँ तो क्यों चलूँ,
स्व मार्ग स्वयं प्रशस्त करूँ
निज लक्ष्य की ओर मैं स्वयं बढ़ूं
पर जाने अनजान समझकर
यह जग जाने क्यों मुझको
जगत व्यवहार सिखलाता है।
मैं अनंत दिशा का राही हूँ
फिर भी जाने क्यों मुझको
यह मधुवन पास बुलाता है।

मेरी पीड़ा मेरा धन है
मैं मदिरालय में जाऊँ क्यों,
मेरी आशा मेरी तृष्णा
किसी कोअपना बनाऊँ क्यों?

पर जाने आकुल जान के मुझको,

मेरे सम्मुख यह मदिरालय
क्यों मदिरा छलकाता है।
मैं अनंत दिशा का राही हूँ,
फिर भी जाने क्यों मुझको
यह मधुवन पास बुलाता है।

विभोर मुझे कर जाता है।

नयनों का यह मार्ग पकड़कर,
अंतर्मन में पहुँच घुमड़कर,
तड़ित दामिनी सदृश बन कर,
कौंध–कौंध कर जाता है।
है किसका सौन्दर्य अनुपम अद्वितीय
जो विभोर मुझे कर जाता है?

न रंभा है न उर्वशी कोई
इन्द्र देव की नगरी से,
न वक्ष कुंभ से उभरे हैं
न नितंभ सोने की गगरी से,
अंर्तमन के चक्षु उघेड़ के
चाहूँ जिसे निहारना मैं,
अदृश्य–दृश्य फिर दृश्य–अदृश्य
यह कैसे खेल रचाता है?
है किसका सौंदर्य अनुपम अद्वितीय
जो विभोर मुझे कर जाता है?

मैं पतझड़ का रसिया हूँ
कहाँ सुंदरता का भान मुझे,
मैं अज्ञानी युगों–युगों से
कहाँ ज्ञान का ज्ञान मुझे,
दूर शून्य की नीरवता में

जाकर जब खो जाता हूँ

तोड़ शान्ति के बंध ये सारे
कौन मृदंग बजाता है?
है किसका सौंदर्यअनुपम अद्वितीय
जो विभोर मुझे कर जाता है?

अप्राप्य

शब्दों के मैंने छंद बनाए,
और वीणा के तार हिलाए,
रागिनी ने भी ली अंगड़ाई,
और मृदंग पर थाप लगाई,

स्वरतंत्रियों की सुध लेकर
चाहा गाऊँ जी भर के पर,
ढोलक ताशे नगाड़े लेकर
मंच कोई सजा न सका।

उस वीणा को झंकृत कर
मैं गीत मिलन के गा न सका।
उस स्निग्ध तरु की छाया तल
कुछ क्षण जीवन के बिता न सका।

मैं गंगा से घट भर लाया,
घी का भी मैंने दीप जलाया,
आँखें मूंदे युगों – युगों तक
कितना मैंने ध्यान लगाया।

भृकुटी पर भी तिलक लगाकर
चाहा पा लूँ तुझको मैं पर,
जलथल में कितना ढूँढा तुझको
द्वार तेरा मैं पा न सका।

उस वीणा को झंकृत कर
मैं गीत मिलन के गा न सका।
मैं स्निग्ध तरु की छाया तले
कुछ क्षण जीवन के बिता न सका।

क्यों उलझाते मुझको

मैंधारा जल की कल–कल निर्झर
आतुर जलधि सामाने को,
तुम बाँध के बाँधों में गति को
क्यों लगे मुझे उलझाने को।

जी चाहे मैं ओड़ दुशाला
किसी आँचल में सो जाऊँ,
या पंख फैलाकर दूर गगन के
किसी छोर में खो जाऊँ।

मीन बनूँ और सागर घूँमु
अतल गहराई अपना लूँ मैं,
या बादल बन कर फिरुँ शिखर पर
तुंग ऊँचाई पा लूँ मैं।

तुम दाने डाले जाल के ऊपर
लगे मुझे भरमाने को।
मैं धारा जल की कल–कल निर्झर
आतुर जलधि समाने को।
तुम बाँध के बाँधों में गति का
क्यों लगे मुझे उलझाने को।

दिनकर से रश्मि सा निकलकर
अंतरिक्ष में छा जाऊँ,
या बन सुगन्ध इन पुष्पों की
बन्धन में न बंध पाऊँ।

दूर जगत से किसी कंदरा में

जा कर ध्यान लगा लूँ मैं,
त्याग असत्य से इस बंधन को
सत्य सृष्टि अपना लूँ मैं।

मन सारथि क्यों उकसाते मुझको
कुरुक्षेत्र में अड़ जाने को।
मैं धारा जल की कल–कल निर्झर
आतुर जलधि समाने को।
तुम बाँध के बाँधों में गति को
क्यों लगे मुझे उलझाने को।

कौन मुझे बुलाता है

उस पार से आवाज़ देकर
कौन मुझे बुलाता है?
सुनना न चाहूँ घुंघरू की छम–छम
कौन मुझे सुनाता है?

स्वप्न दिखाकर सुंदर से
यह कौन मुझे भरमाता है?
उस पार से आवाज देकर
कौन, मुझे बुलाता है?
सुनना न चाहूँ घुंघरू की छम–छम
कौन मुझे सुनाता है?

दूर क्षितिज पर अंबर अवनि
जब पास सिमट कर आते हैं,
तभी पपीहा पिहू ध्वनि कर
दूर कहीं उड़ जाता है।
उस पर से आवाज देकर
कौन मुझे बुलाता है?
सुनना न चाहूँ घंघरू की छम–छम
कौन मुझे सुनाता है?

मैं ठहरा पतझड़ का रसिया
सूखे पत्ते चिनता हूँ,
अपने अश्रु अपनी कराहें
मैं बोझिल मन चिनता हूँ।

इस दुनियाँ के वीराने में
जब याद तुम्हारी आती है,
स्मृति पटल पर अंकित होकर
मुझको बहुत रुलाती है।

किसे सुनाऊँ मैं

हृदय मृदंग यह वाणी वीणा
जी चाहे जी भर गाऊँ मैं,
पिया मेरे परदेसी ठहरे
गाकर किसे सुनाऊँ मैं?

प्रीत पतंगा लौ से करता
भँवरा फूल पे मंडराए,
चकवा देखे चाँद का रस्ता
मैना तोते के गुण गाए।

मेरा प्रियतम दूर है बैठा
किससे प्रीत लगाऊँ मैं?
हृदय मृदंग यह वाणी वीणा
जी चाहे जी भर गाऊँ मैं,
पिया मेरे परदेसी ठहरे
गा कर किसे सुनाऊँ मैं?

विखंडित हो हिम खंडो से
उतर शिखर से आती है,
कल–कल करती बढ़ती सरिता
अंत सिन्धु संग मिल जाती है।

मैं सरिता न जानूँ सागर
जा कर कहाँ समाऊँ मैं?
हृदय मृदंग यह वाणी वीणा
जी चाहे जी भर गाऊँ मैं,

पिया मेरे ठहरे
गाकर किसे सुनाऊँ मैं ?

तृण–तृण चुन कर चोंच से बुनकर
यह खग नीड़ बनाते हैं,
दाना चुन कर चोंच में भरकर
साँझ ढले घर आते हैं।

द्वार पिया का मैं न जानूँ
कैसे घर तक जाऊँ मैं?
हृदय मृदंग यह वाणी वीणा
जी चाहे जी भर गाऊँ मैं,
पिया मेरे परदेसी ठहरे
गाकर किसे सुनाऊँ मैं?

निर्मोही अब तो बरस जाओ

घुमड़–घुमड़ कर यूँ न गरजो,
ओ घन बूंदे बरसाओ।
मैं आतप पथ को निहार रहा,
निर्मोही अब तो बरस जाओ।

तेरी शीतलता हेतु मैंने
यज्ञ रचाए हैं कितने,
तुमको पाने हेतु मैने
अश्रु बहाए हैं कितने?

घनश्याम स्वयं तुम
फिर भी मैं तरसूँ
और न मुझ को तरसाओ।
घुमड़ – घुमड़ कर यूँ न गरजो
ओ घन बूंदे बरसाओ।
मैं आतप पथ को निहार रहा
निर्मोही अब तो बरस जाओ।

तर्क–वितर्क की मथनी से
मन सागर को भी मथ डाला,
विष को कंठ में अपनाया
पर नहीं मिला अमृत प्याला,

बन के सुंदरी हे केशव न
भ्रमित मुझे कर देना तुम, ले
अमृत घट को असुरों से कुछ
बूंदे मुझे भी दे जाओ।

घुमड़–घुमड़ कर यूँ न गरजो
ओ घन बूंदे बरसाओ।
मैं आतप पथ को निहार रहा
निर्मोही अब तो बरस जाओ।

मैं कदर्य व्यक्तित्व तू तुंग अचल
फिर भी मैं तुझको पाऊँगा,
उस पर खड़े हो ओ प्रियतम
मैं भी उस पार चला आऊँगा,

जीवन नैया पार उतरने में
अभी समय कुछ बाकी है,
थामने मेरी नैया को
कुछ क्षण तो यहाँ बिता जाओ।
घुमड़–घुमड़ कर यूँ न गरजो
ओ घन बूंदे बरसाओ।
मैं आतप पथ को निहार रहा
निर्मोही अब तो बरस जाओ।

अब आ जाओ

संतप्त है तन संतप्त मेरा मन
मेरे मन की तृष्णा मिटा जाओ,
बहता है जल आँखों से अविरल
घनश्याम नाथ अब आ जाओ।

मैं विरहन हूँ तू साजन है,
मैं धरती स्वयं को कहुँ यदि
फिर मेरे लिए तू सावन है।
मैं ज्येष्ठ मास सी तपी हुई
रिमझिम बूँदें बरसा जाओ।
संतप्त है तन संतप्त मेरा मन
मेरे मन की तृष्णा मिटा जाओ,
बहता है जल आँखों से अविरल
घनश्याम नाथ अब आ जाओ।

मैं प्यासा हूँ तू मधुशाला,
मैं मृत्यु स्वयं को कहूँ यदि
तू मेरे लिए अमृत प्याला।
मेरी वीणा के तार हैं टूट चुके
तुम राग मिलन का सुना जाओ।
संतप्त है तन संतप्त मेरा मन
मेरे मन की तृष्णा मिटा जाओ,
बहता है जल आँखों से अविरल
घनश्याम नाथ अब आ जाओ।

मेरा कंठ आज अवरुद्ध हुआ
मेरी पायल आज है टूट चुकी।,

मेरे गीत हैं मुझसे दूर हुए

मेरी वीणा मुझसे रूठ चुकी।
तुम कहाँ बसे हो ओ प्रियतम,
मुझे अपना पता बता जाओ।
संतप्त है तन संतप्त मेरा मन
मेरे मन की तृष्णा मिटा जाओ,
बहता है जल आँखों से अविरल
घनश्याम नाथ अब आ जाओ ।

कब आओगे

जीवन का हर क्षण हारा
मैं हार चुका मन मनहारी,
नित नयन पथ पे बिछे हुए
कब आओगे ओ गिरिधारी।

चन्द्र गगन में चमके और
चकोर निहारे चंदा को,
न दरस तुम्हारे मिलें मुझे
निहारूँ बताओ मैं किसको।
तन अर्पित है मन अर्पित है
न यूँ तड़पाओ बनवारी।
जीवन का हर क्षण हारा
मैं हार चुका मन मनहारी,
नित नयन पथ पर बिछे हुए
कब आओगे ओ गिरिधारी।

मन मेरा रमा रमता ही गया
ओ श्याम नाथ ओ निर्मोही,
पथिक न तुझ तक जाता मिले
न मिले मीत मन का कोई।
गिरि को तुमने धारा था
मुझको भी धारो गिरिधारी।
जीवन का हर क्षण हारा
मैं हार चुका मन मनहारी,
नित नयन पथ पर बिछे हुए
कब आओगे ओ गिरिधारी।

मैं भ्रमर सही तू पुष्प सही
पर भ्रमर पुष्प के पास नहीं,`

इस क्षण भंगुर जीवन में मुझको
शाश्वत की कोई आस नहीं।
अब आन मिलो मुझे ओ प्रियतम
हो पूर्ण मेरी आशा सारी।
जीवन का हर क्षण हारा
मैं हार चुका मन मनहारी,
नित नयन पथ पे बिछे हुए
कब आओगे ओ गिरिधारी।

मेरा पथ

काँटों के पथ से भी मैं
पुष्पों की अभिलाषा करूँ,
इस अरि जगत में जानें क्यों
मैं मृदुल प्रेम की भाषा पढ़ूँ ।

मुझे हटाना चाहे पथ से
कभी स्वयं अभिमान मेरा,
पर मैं प्रेम पथिक ठहरा
क्यों हृदय में अपने निराशा भरूँ।
काँटों के पथ...............

झूठे जग के बंधन हैं
पर मैं इन्हें निभाता जाता हूँ,
न सुने कोई मेरे गीतों को मैं
फिर भी गाता जाता हूँ।

पथ–भ्रष्ट मुझे करना चाहे
दे जग आलंबन अपने सारे,
अपने धर्म से सब रिश्तों को
मैं स्वयं निभाता जाता हूँ।

जब तक मन में ज्ञान स्थिर है,
ले मन में नव आशा लड़ूँ।
काँटों के पथ...........................

कैसी प्रीत

हृदय आज आकुल है प्रियतम
तुम भी मेरे पास नहीं,
तुम संग प्रीत यह कैसी साजन
मिलने की कोई आस नहीं।

कैसे अंगीकार बनो तुम
साधना मेरी अधूरी है,
मिलने को हृदय व्यथित बहुत
पर न मिलना मजबूरी है।

यह निर्जीव वपु तुम बिन साजन
जब तक इसमें स्वास नहीं।
हृदय आज आकुल है प्रियतम
तुम भी मेरे पास नहीं,
तुम ....

इतना आकुल इतना व्याकुल
मन मेरा क्यों होता है,
साजन तुमको पाने हेतु
बन चकोर मन रोता है।

बन चंद्रमा दूर गगन से
एक झलक दिखला दो न,
प्रत्यक्ष हुए तो मैं, मैं रह पाऊँ
मुझको यह विश्वास नहीं।
हुदय आज आकुल है प्रियतम
तुम ....

तुमको कराहों में ढूँढ़

पर तुम मत देना पीड़ा मुझे,
प्रेम पथ है काँटों भरा
पर परमानंद मैं मानू तुम्हें।

स्वप्न सौन्दर्य के उन्मुक्त गगन पर
बन आनन्द छा जाना तुम,
क्या आनंद जब तक हो तेरे
आने का आभास नहीं।
हृदय आज आकुल है प्रियतम
तुम.................

मेरी व्यथा

तुमको प्रियतम सूझे ठिठोली
मेरे तो हिय का नाता है,
न आँख मिचौली खेलो प्रिय तुम
यह खेल मुझे न सुहाता है,
जब तुम ओट में छुप जाते हो
स्वास कहाँ मुझे आता है,
तन व्यथित और मन व्यथित
हृदय व्यथित हो जाता है।

कभी कोयल की कूक सुनूँ मैं
कभी भवरों का गान सुनूँ,
कभी यमुना की लहरें देखूँ
कभी वंशी की तान सुनूँ।
कभी कदंब के पेड़ पे बैठूँ
कभी निकुंज में रास करूँ,
कभी पीत पट कटि में बाँधू
कभी मोर पंख शीश धरूँ।

अब तो निशी –दिन इसी पीड़ा में
आनंद परम मुझे आता है।
तुमको प्रियतम सूझे ठिठोली
मेरे तो हिय का नाता है,
न आँख मिचौली खेलो प्रिय तुम
यह खेल मुझे न सुहाता है,
जब तुम ओट में छुप जाते हो
स्वास कहाँ मुझे आता है,
तन व्यथित और मन व्यथित
हृदय व्यथित हो जाता है।

कभी गइयों के संग चलूँ मैं
मधुवन जा कर इतराऊँ,
माखन मिश्री लेकर कर में
आनन अपने लिपटाऊँ।
कभी मटकी माखन की फोड़ूँ
कभी गोपी पट डाली धरूँ,
कभी सुदामा संग मैं खेलूँ
दधि–माखन की चोरी करूँ।

अब चिन्तन में क्रियाएँ यही हैं
और न कुछ मुझे भाता है।
तुमको प्रियतम सूझे ठिठोली
मेरे तो हिय का नाता है,
न आँख मिचौली खेलो प्रिय तुम
यह खेल मुझे न सुहाता है,
जब तुम ओट में छुप जाते हो
स्वास कहाँ मुझे आता है,
तन व्यथित और मन व्यथित
हृदय व्यथित हो जाता है।

जीवन के इस कुरुक्षेत्र में
मन अर्जुन का सारथि बनूँ,
कर्मयोग और ज्ञान योग की
कभी हृदय से बात करूँ।
कर्महीन से बने अर्जुन को
गाकर अब मैं समझाऊँ,
आत्म तत्व अमर है जग में
सार यह गाकर बतलाऊँ ।

स्वांग करूँ मैं कैसे–कैसे
अब और न कुछ मुझे भाता है।
तुमको प्रियतम सूझे ठिठोली
मेरे तो हिय का नाता है,
न आँख मिचौली खेलो प्रिय तुम
यह खेल मुझे न सुहाता है,
जब तुम ओट में छुप जाते हो
स्वास कहाँ मुझे आता है,
तन व्यथित और मन व्यथित
हृदय व्यथित हो जाता है।

याद तुम्हारी आती है

मंद पवन जब गंध लिए
आनंदमय कर जाती है,
श्यामा पिक जब मधुदूत पर
बैठ के राग सुनाती है,
उपवन में जब मधुकर आकर
पुष्प मधु रस पीते हैं,
और विहग जब कलरब करके
अद्‌भुत जीवन जीते हैं।

दिनकर दिनभर कलांत होकर
दूर क्षितिज में समाता है,
संध्या की लाली से अंबर
चित्रमयी बन जाता है,
उच्च शिखर पर शोणित सी जब
अंतिम किरणें गिरती हैं,
जब मंद पवन से विटप डालियाँ
धीरे–धीरे हिलती हैं।

जब निशा रमणी के माथे पर
मयंक आकर सजता है,
जब अंबर पर रात ढले
तारों का मेला लगता है,
जब रात्रि की नीरवता में फिर
झिंगुर आ कर गाते हैं,
चन्द्र ज्योत्स्ना रश्मि मिलकर
हृदय के तार बजाते हैं।

फिर बीते विभावरी अंधियारी
जब भोर की वेला आती है,
पूर्व दिशा के माथे पर
लाली सी छा जाती है,
सरिता को छू कर अवनि अंबर पर
आर्द्र पवन जब चलती है,
ऊषा रथ से त्रसित रात्रि
अंबर से जब ढलती है।

निसी दिन जब–जब यह सब होता
आँख मेरी भर जाती है,
मेरे हृदय को आकुल करने
याद तुम्हारी आती है।

जब धीरे–धीरे सूरज की किरणे
ठंडी होने लगती हैं,
बिन बरखा के रातें जब
वृक्षों को भिगोने लगती हैं,
जब घरती की छाती पर फिर
कोहरे की चादर छाती है,
हिम की चादर पर्वत पर
जब अपने पैर जमाती है।

कीट पंतगे इस सरदी में
घरती में छुप जाते हैं
और ठिठुरते खग–मृग सारे
कहीं दुबक से जाते हैं,

फिर धीरे–धीरे ठिठुरन का

प्रकोप शिथिल हो जाता है,
और बसंत मन भावन जब
आकर पैर जमाता है।

गेहूँ की भरी बालियाँ
जब पवन से हिलने लगती हैं,
और सरसों की पीली कलियां
जब धीरे से खिलने लगती हैं।
फिर सूरज के तपने से
गेहूँ पक पीली हो जाती है,
भीष्म ग्रीष्म में दिनकर की किरणे
धरती को खूब तपाती हैं।

क्षुदा पिपासा से जब खग–मृग
कितने आकुल होते हैं,
नीर बिना जब जलचर–थलचर
कितने व्याकुल होते हैं।
कृषक बादलों की राह जोहते
अंबर ताकने लगते हैं,
बिन बरखा के नदी से जब
पत्थर झाँकने लगते हैं।

क्षुदा की शान्ति हेतु श्रमिक
जब धूप में खून बहाता है,
और परीक्षा लेने को पारा
कुछ और ऊपर चढ़ जाता है।

फिर पंख फैलाकर कानन में
जब मोर नाचने लगता है,
जब काले बादल की सेना का
अंबर पर मेला लगता है।

जब गरज–गरज कर छमक–छमक कर
वर्षा की बूंदें गिरती हैं,
जब कौंध–कौंध कर बिजली चमके
सारी धरती हिलती है।
जब सुबह शाम और रात ढले
घन, बूंदे बरसाने लगते हैं,
अवतरित हो कर जल में दादुर
संगीत सुनाने लगते हैं।

तरुओं पर नव अंकुर से
जब नव तरुणाई आती है,
चहुँ दिशी पूर्ण यौवन लेकर
हरियाली छा जाती है।

पूर्ण वर्ष में प्रकृति रानी
जब यह सब खेल दिखाती है,
मेरे हृदय को आकुल करने
याद तुम्हारी आती है।

भाग–2

एक पत्थर

एक पत्थर
जिसके पास
कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप दे देते हैं
और
सजा देते हैं
किसी चौराहे पर,
उससे उसकी स्वाधीनता
छीन लेते हैं,
और पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ ।

हाँ मैं निष्प्राण हूँ,
तभी तो
नहीं कर पाता हूँ
विरोध,
समाज – शत्रुओं का,
जो
स्व–लाभार्थ
औरों को भड़काते हैं,
रक्त को सड़कों पर बहा
अपनी उपस्थिति जतलाते हैं,
और...............
मैं..................
विरोध नहीं कर पाता हूँ।
हाँ ऽ ऽ

मैं एक पत्थर हूँ,
एक पत्थर
जिसके पास कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप दे देते हैं
और................. मैं निष्प्राण हूँ

हाँ
मैं निष्प्राण हूँ
तभी तो
मेरी आँखों के सामने
कहीं आग लगती है,
किसी की माँ बहन
झूठे कानून की
सूली पर चढ़ती है।
शब्दों के आडंबरों से
योजनाएँ बनती हैं,
जो
शोषकों के घरों के उजाले को
कुछ और तेज करती हैं,
और मैं विरोध नहीं कर पाता हूँ।

हाँ
मैं एक पत्थर हूँ,
एक पत्थर
जिसके पास कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप दे देते हैं
और
सजा देते हैं

किसी चौराहे पर,

उससे उसकी स्वाधीनता
छीन लेते हैं,
और पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ।

हाँ
मैं एक पत्थर हूँ,
एक पत्थर,
तभी तो
मेरी आँखों के सामने
पूरा समाज जलता है,
कुम्हार के चाक पर चढ़े
घड़े की तरह
घूमता है
और
रूप बदलता है,
चोट पर चोट की जाती है,
परन्तु,
कुम्हार के चाक में
और
समाज में
बड़ा अन्तर है,
एक
निर्जीव मिट्टी को
रूप देता है,
और, दूसरा
जीते जागते मानव से

मानवता हर लेता है।
और......................
मैं.......................
विरोध नहीं कर पाता हूँ,

हाँ.........
मैं पत्थर हूँ,
एक पत्थर
जिसके पास
कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप
दे देते हैं,
और
सजा देते हैं
किसी चौराहे पर,
उससे उसकी
स्वाधीनता छीन लेते हैं,
और पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ।

हाँ
मैं पत्थर हूँ,
एक पत्थर।
नहीं ऽ ऽ !!!
मैं पत्थर नहीं हूँ,
मेरी अंतरात्मा
विरोध करती है
मैं लड़ूँगा,

समाज को नया रूप दूँगा,
लहू सड़कों पर
नहीं बहाया जाएगा,
किसी को अनुचित
कानून की सूली पर
नहीं चढ़ाया जाएगा,
शोषकों को समाप्त कर
समानता लाऊँगा,
मैं कुम्हार,
समाज को
शीतलता देने वाला
कुंभ बनाऊँगा।

परन्तु
इस जगत के
महाभारत में,
मेरी आवाज़
दबा दी जाती है, नगाड़ों में......
युधिष्ठिर की आवाज़ की तरह!
और मैं.....
फिर वही पत्थर,
एक पत्थर,
जिसके पास कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप दे देते हैं,
और सजा देते हैं
किसी चौराहे पर,
उससे उसकी
स्वाधीनता छीन लेते हैं,

और पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ।

हाँ मैं पत्थर हूँ,
एक पत्थर,
तभी तो मेरे रहते
हर आदमीं अकेला है,
चाहे शहर में
आदमियों का मेला है,
यूँ तो मानव
सामाजिक प्राणि है,
परन्तु,
मनुष्य के
सामाजिक होने में ही,
हानी है
क्योंकि
समाज बंटा है,
धर्म के आधार पर,
संप्रदाय के आधार पर,
मानव
सीमाओं में बंधा है,
देश की,
प्रदेश की,
मनुष्य जाति
एक होकर भी
एक कहाँ है?
मनुष्यों का रेला है,
विचारों का झमेला है,

कहीं धार्मिक आधार है,
धर्म एक है तो
जाति का व्यापार है,
धर्म और जाति एक हैं तो
भाषा का बंध है,
तीनों एक हैं तो
पूँजीपति और समाजवाद
का द्वंद्व है,
न बदला है
न बदलेगा,
सदियों से चला है
कब तक चलेगा ?
सभी मूक दर्शक हैं,
जितना – जितना
पेट है
उतने – उतने
भक्षक हैं।
यह सब मेरे सामने होता है
पर कौन अपनी आँखे
भिगोता है ।
सभी पत्थर हैं,
मैं भी पत्थर हूँ,
एक पत्थर,
जिसके पास
कुछ औजार पड़े हैं,
जो
उसे कोई रूप दे देते हैं,
और

सजा देते हैं
किसी चौराहे पर,
उससे उसकी
स्वाधीनता छीन लेते हैं,
और
पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ।

हाँ मैं पत्थर हूँ,
एक पत्थर,
तभी तो
मैं
ऐसे समाज का अंग हूँ,
और
सदा उसके संग हूँ,
जो भावना शून्य है।
रिश्तों में बंधा हूँ,
और
इन्हें निभाने के लिए
सूली पर चढ़ा हूँ।
सब रिश्ते तुड़े–मुड़े हैं,
जितना स्वार्थ है
उतने ही जुड़े हैं।
यूँ तो
घर है, समाज है,
गाँव है, शहर है,
भाई हैं, बहनें हैं,
माँ है, पिता हैं,

पुत्र है
अर्धांगिनी भी है,
कभी–कभी लगता है
बायाँ भाग भी
दाएँ से भिन्न है,
हर रिश्ता
अहँ के हाथों छिन्न है,
हर रिश्ता तुड़ा–मुड़ा है,
मैं नहीं खोज पाता
कि
यह कहाँ से जुड़ा है?
मैं भी चौराहे पर
पड़ा हूँ,
जहाँ खड़ा कर दिया गया
खड़ा हूँ,
चाह कर भी
स्थान नहीं बदल पाता हूँ,
कभी–कभी
कितना विवश हो जाता हूँ।
शायद
पत्थर हूँ,
एक पत्थर
जिसके पास
कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप
दे देते हैं
और..............
...........मैं निष्प्राण हूँ।

हाँ मैं पत्थर हूँ,
तभी तो मेरे सामने
तलवार उठती है,
और किसी चौराहे पर
किसी की गर्दन कटती है,
गोली चलती है,
और निरीह जनता
जानवर की तरह
मरती है।
मानव की मृत्यु पर
तर्क–वितर्क होते हैं,
और मानवता के असूल
इस बलीवेदी पर
गर्क होते हैं।
कुछ लोग
अपने विचारों को
सर्वत्र व्याप्त
करना चाहते हैं,
और
इस हेतु
मानव जाति को ही
समाप्त करना चाहते हैं।
कुछ
विचारधाराओं की
सूली पर चढ़ते हैं,
और कुछ
जो एक है
उसके नाम पर

मारते हैं
या
मरते हैं।
कुछ
नई सीमाएँ चाहते हैं,
जिनका कुछ नहीं खोया
वे
स्वयं की उपस्थिति जताने के लिए
अपना हक माँगते हैं।
यह सब
मेरे सामने की सड़क पर
होता है,
मानव मानव के विरुद्ध
नफरत के बीज
बोता है,
और मैं
विरोध नहीं कर पाता हूँ।

शायद पत्थर हूँ
एक पत्थर
जिसके पास
कुछ औज़ार पड़े हैं,
जो उसे कोई रूप
दे देते हैं,
और
सजा देते हैं
किसी चौराहे पर,
उससे उसकी
स्वाधीनता छीन लेते हैं,
और पत्थर सोचता है
मैं निष्प्राण हूँ।

मैं सोचता हूँ

कभी–कभी
मैं स्वयं में सोचता हूँ,
जीवन की धारा
निरंतर
क्यों बहती है?
सुंदर, सलोने
किसी सुरम्य गाँव में,
दूर दुपहरिया से
किसी शीतल छाँव में,
जीवन भर के लिए
क्यों न ठहरती है ?
कभी–कभी
मैं स्वयं में सोचता हूँ।

सुन्दर, सलोने
किसी सुरम्य उपवन में,
निश्छल स्वच्छ
किसी सुंदरतम मन में,
पुष्प खिलते हैं
फिर क्यों बिखर जाते हैं?

कभी–कभी
मैं स्वयं में सोचता हूँ
विरह चिर है
तभी
मिलन की महत्ता है,
द्वेष बिना

क्या कभी
स्नेह की सत्ता है?
तभी जीवन की धारा
निरंतर बहती है,
किसी गाँव में,
किसी छाँव में,
किसी मन में,
सुरम्य उपवन में,
निस्पंद होकर
कब
कहीं ठहरती है ?

कभी–कभी
मैं स्वयं में सोचता हूँ।

जंगल राज

जंगल की संसद के सांसदों ने
नारा लगाया,
जंगल की गरीबी मिटाएँगे।
जानवरों ने सोचा,
यह नेता इस दिशा में
क्या कर पाएँगे ?
सारी संसद में विचार हुआ,
सभी दलों के नेताओं का
अपनी–अपनी बुद्धि पर
प्रहार हुआ,
मत – मतान्तर के पश्चात
यह मत
ध्वनिमत से
स्वीकार हुआ
कि
हमेशा विरोध में रहने वाले नेता,
जानवरों के हित में
एक मंच पर आएँगे,
जंगल को शश्य–श्यामला
सुंदरतम प्रदेश बनाएँगे,
और
इस नेक काम की शुरुआत
घर से करेंगे,
अपना वेतन बढ़ाकर

सर्व· प्रथम

अपनी झोली भरेंगे।
अगर अपनी गरीबी
हटाने के प्रयास में
सफल हो जाएँगे,
तभी तो जंगल के
गरीबों की गरीबी
मिटा पाएंगे।

जंगल के सांसदों ने
दूसरा नारा दिया,
भ्रष्टाचार मिटाएँगे,
जंगल को भ्रष्टाचार मुक्त
राज्य बनाएंगे।
मुँह बाए खड़ी
सुरसा का हनन करेंगे,
इस हेतु
सभी नेता मनन करेंगे।
गिद्ध, कौओं और सियारों ने
विचार किया,
शत्रु दल के नेताओं ने
सद्भावना का
परिचय दिया,
मिल जुल कर
एक मत से
यह निर्णय किया...............

पहले भ्रष्टाचार को जानेंगे
तभी तो मिटा पाएंगे,
इसलिए सभी नेता
भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाएंगे।
सभी रिश्वत, कमीशन
और उपहार स्वीकार करेंगे,
जिस पथ पर
भ्रष्टाचार पनपता है
उस पथ पर चलेंगे,
अंत में
जो सबसे बड़ा भ्रष्टाचारी
पाया जाएगा,
उसे
भ्रष्टाचार निरोधक दस्ते का
नेता बनाया जाएगा।
और
अब निर्णय की घड़ी में,
बड़ी विकट समस्या
उपस्थित हो गई है,
और जंगल की उन्नति
राहु के हाथों
ग्रसित हो गई है।
किसके हाथ में
भ्रष्टाचार निरोधक दस्ते की
कमान सौंपे

इस विषय पर
सभी नेता मौन हैं,
क्योंकि
यह निर्णय करना कठिन है,
कि सबसे बड़ा भ्रष्टाचारी
कौन है?

फिर नारा दिया
साम्प्रदायिकता और जातिवाद
दूर करेंगे,
सब मिलजुल कर रहें
इस दिशा में
प्रयास भरपूर करेंगे।
पूरे जंगल को
धर्मनिर्पेक्ष बनाया जाएगा,
और इस दिशा में
हर सम्भव कदम
उठाया जाएगा।
इसलिए हर छोटा बड़ा
धर्मनिर्पेक्ष बनने के लिए
डटा हुआ है,
और इस हेतु
अपने–अपने धर्म से
हटा हुआ है।
अब राजा
राज धर्म नहीं निभाता,

कोई भी जानवर
अपने धर्म का पालन
नहीं कर पाता,
और
जो निभाता है
उसके लिए
विकट समस्या
अपरिस्थित हो जाती है,
उसे कहा जाता है
कि वह
विभीषण की तरह
कुल घाती है।
और उसके लिए
जंगल में रहना
संभव नहीं हो पाता है,
क्योंकि उसे
धर्मनिर्पेक्ष
नहीं समझा जाता है।
साम्प्रदायिकता और जातिवाद
समाप्त करने हेतु
प्रयास हो रहे हैं,
इस दिशा में भी
इन्तजाम खास हो रहे हैं।
तभी तो अब पूरे जंगल का नेता
कहाँ मिल पाता है?
जो मिलता है

वह अपने संम्प्रदाय
जाति या क्षेत्र का
हो कर रह जाता है।
वह अपने
सम्प्रदाय, जाति या
क्षेत्र की भाषा
बोलता है,
और
जंगल की उन्नति को
कम करके तोलता है।
इन सांडों की
गुत्थमगुत्था में
महा विनाश हो रहा है,
नई कोंपलें फूटती नहीं,
और
जो हैं
उनका ह्रास हो रहा है।

अदृश्य दृश्य

सरदी की सुबह
छाया कोहरा
हर तरफ,
मैं देख पाता हूँ
कुछ दूर तक,
और उसके बाद
क्या है
कोहरे के उस पार?
नहीं हो पाता
यह अहसास।
झाँकना चाहता हूँ,
टटोलना चाहता हूँ,
आभास करना चाहता हूँ,
कोई तो बता दे
कौन है
क्या है
कैसा है
छुपा हुआ कोहरे में ?
है विशाल पर्वत
या कण से भी छोटा,
है विशाल वृक्ष
या तृण से भी छोटा।
कोई सजीव है
या निर्जीव है,

या उससे भी परे
कुछ और है,
जिसका आभास
नहीं कर पाती हैं
यह ज्ञानेन्द्रियाँ।
कौन छुपा है
कौहरे के उस पार?
नहीं हो पाता अहसास।

कोई पथ प्रदर्शक,
दिखाता है रास्ता
कुछ दूर तक,
आगे का लक्ष्य
क्या उसे है पता?
या
उसने है झाँका
एक छोर,
पर कोहरा है
चहुँ ओर।
चारों ओर होंगे
अनजान दृश्य
झाँका है उसने
कुछ दूर तक,
उसे होगा उतना ज्ञान।
वह करता है व्याख्या
उसी दृश्य की,

खींचता है तस्वीर

उस
भविष्य की
यहाँ पहुँचना है हमें,
कोहरे के पार,
पर कोहरा है
चहुं ओर।

हर तरफ
कैसे है दृश्य?
कौन छुपा है
कोहरे के उस पार?
नहीं हो पाता अहसास।

जल

मैने पूछा :–
हे जीवन के आधार,
तुम पर टिका
अखिल संसार,
कोमल शीतल
जल,
तुम कैसे हो
इतने विनम्र?
निरंतर
झुकते चलते हो,
उतर पर्वत से
नीचे गिरते,
अंत सिंधु संग
मिलते हो।
जल ने
उत्तर दिया :–
"मैं हूँ विनम्र,
हिम से पिघल,
बनता हूँ जल,
बहता कल–कल,
प्यास बुझाता सभी की,
हर पल
और अंत में
सागर संग जाता हूँ मिल।
पर
नहीं कमज़ोर,

और नहीं आजमाता

किसी अहसास
पर ज़ोर।
मैने हमेशा
चट्टानों को काटा है,
पर्वतों को छाँटा है,
साहस को अदम्य बनाया है,
अगम्य को गम्य बनाया है,
सहरा को रम्य बनाया है।

मैं हूँ जल,
बहता कल–कल
प्यास बुझाता सभी की
हर पल।"

इन्द्रधनुष सा जीवन

अनुपम–अद्वितीय,
सुंदरतम,
यह जीवन।
हर पल नई उमंग,
मन में नव तरंग,
मन भावन प्रिय संग,
फैले सप्त रंग
इंद्रधनुष से।
रंग!
इंद्रधनुष से!
गरजते बादल
बरसते बादल,
फिर सूरज की विपरीत
दिशा में
होता उजागर,
एक इंद्रघनुष।

फैलाता रंग
कुछ क्षण,
दिखाता स्वयं का रूप,
अद्‌भुत अनूप।
और फिर हो जाता
अंतर्ध्यान,
कहाँ चला जाता
इंद्रघनुष?
कहाँ छुप जाते
सारे रंग,
सारी उमंग,
सारी तरंग,
इंद्रधनुष की।

याद करूँ

क्या ?
मैं तुम्हें याद करूँ!
क्यों मैं तुम्हें
याद करूँ?
तुमने मुझे
दिया है क्या
कि मैं तुम्हें
याद करूँ?
आज
वह सब
मेरे पास नहीं,
जिसे
मैं अपना कह सकता था।
मैंने
सर्वस्व समर्पित कर दिया,
तुम्हारे पथ पर सब कुछ
अर्पित कर दिया।
और
मेरा समर्पण
तुम तक पहुँचते–पहुँचते
न जाने
कहाँ खो गया,
यह खोना
न जाने कितने
नयन भिगो गया।
शायद तुम्हें मिला हो
मेरा समर्पण,
पर तुमने कभी

स्वीकारा नहीं,
मुड़कर कभी

पुकारा नहीं।
और मैं पड़ा,
मोड़ पर खड़ा,
निहारता रहा,
भूत से
वर्तमान तक,
संभवतः
भविष्य तक भी।

आजकल

यूँ तो शहर से
सिक्स लेन गुजरती है,
मैट्रो पटरियों पर,
आधुनिक कारें
सड़कों पर चलती हैं।
बहुमंज़िला इमारतें हैं
आधुनिक मॉल हैं,
जो बहुत विशाल हैं।
पर वहीं
सड़क के दूसरी ओर
एक अलग दुनिया
पलती है,
यह वह तस्वीर है
जो कम ही बदलती है।
10×10 की खोली में
आदमी सोता है,
नहाता है,
खाना पकाता है,
और यहीं से
शहर को संवारने,
भोर की
पहली किरण से पहले
निकल जाता है।

यूँ तो शहर में
कानून राज है,
सभ्य दिखता समाज है।
पुलिस है

न्यायालय हैं
जो न्याय व्यवस्था
संभालते हैं,
व्यक्ति को राज्य की
व सामाजिक व्यवस्था में
ढालते हैं।
पर वहीं सड़क पर
कुछ पाशविक प्रवृत्तियाँ
उड़ाती हैं
कानून की धज्जियाँ।
सरेआम
लूट, चोरी होती है,
कोई अबला कभी
मुँह ढाँपें रोती है,
ऐसी परिस्थितियों में
व्यवस्था का जोर
नहीं चल पाता है,
और अपराधी
अपराध करके
निकल जाता है।

यूँ तो शहर में
व्यवस्था है,
प्रत्येक कार्य के लिए
अलग संस्था है।
पर यह व्यवस्था
व्यक्ति तक
कहाँ पहुँचती है?
साधारण जनता

इन्तज़ार करती है
और सोचती है।
जो खास
व्यवस्था के साथ
तारतम्य बिठा पाता है,
वही सबके हिस्से का लाभ
ले जाता है।
और आम जनता
जो इस व्यवस्था से
मेल नहीं बिठा पाती है,
वह इन्तज़ार करती
रह जाती है।

नदी

नदी,
तुम हो बंधी
दो किनारों में,
क्या नहीं करती विश्वास
और सहारों में?
या नियति है बंधना,
बंधे हुए निरंतर चलना,
बहना, होना अग्रसर
आए पर्वत सी रुकावट अगर
तुम कहाँ रुकती हो मगर?
काटती चीरती
निकल जाती हो,
पर दो किनारों में
बँधी रहती हो।

कभी तो उठता होगा तूफान,
भावनाओं का उफान,
तभी तो
जब कभी मचलती धारा,
तोड़ती किनारा,
धरे रूप विकराल,
जल का नहीं होता पारावार,
तब नहीं रहती पाबंद
तोड़कर सारे बंध
निकल जाती हो,
तब
किनारों में
कहाँ बंध पाती हो?

परंतु,
यह बंधन तोड़ना,
किनारें की सीमा छोड़ना,
अपनों से मुँह मोड़ना,
कितना विचलित कर देता है?
कितने खेत खलियान,
कितने गाँव–घर
कितने परिवारों
के मान को
डुबो देता है?
हे नदी,
तुम बंधी
अति सुंदर लगती हो।

कल–कल बहती चलती हो,
दिखते हैं कितने सुंदर रूप,
कहीं झरणे कहीं गहराइयाँ
कहीं छाँव कहीं धूप।
तुम्हारी गहराइयों में
कितने जीव पलते हैं,
तुम्हारे शीतल जल से
प्यास बुझा सकते हैं।
पर उफनती हो जब
लिए मटमैला रंग,
कहाँ खो जाती है
वह स्वच्छ उमंग, तरंग?
यह उफान क्षणिक होता है,
परंतु तुम्हारे इस कृत्य से
भुक्त–भोगी

जीवन भर रोता है,
क्योंकि
पीडियों से अर्जित
सम्मान, संपत्ति
सब खोता है।

हे नदी
तुम बंधी
अति सुंदर लगती हो।

जुगनू की लौ

अंधेरी रात,
नीरवता को चीरती
झींगुरों की आवाज़,
बादलों की ओट से
कहीं–कहीं टिमटिमाते तारे,
रात्रि की आगोश में
अचेतन से दिखते सारे,
न पशुओं की आवाज़
न पक्षियों का चहचहाना,
अंधेरे में डूबा
सारा ज़माना,
न बाती न लौ
सारे रंग गए हैं खो।
ऐसे में अंधकार को चीरता
जुगनुओं का प्रकाश,
अंधेरे में उजाले का
देता आभास।
छोटे–छोटे जुगनुओं का
थेड़ा सा उजाला
अपनी उपस्थिति जता देता है,
अपना पता बता देता है।

जुगनू तो
दिन में भी होते होंगे,
अपने प्रकाश को
संजोते होंगे,
परंतु
सूरज के सामने

उनकी एक नहीं चलती,
और जुगनू के प्रकाश को
मान्यता नहीं मिलती।

जुगनू चमकता है
जब होती है
अंधेरी रात,
नीरवता को चीरती
झींगुरों की आवाज।

दर्पण

दर्पण
चेहरा दिखाता है,
जैसा हो वैसा
नज़र आता है।
दर्पण
कोई भेद नहीं करता,
अपनी तरफ से
कोई रंग नहीं भरता,
जो जिस तरह
सामने खड़ा हो जाता है,
वह स्वयं को
ठीक वैसा पाता है।
दर्पण
चेहरा दिखाता है।
चेहरे पर क्रोध,
भावों में अवरोध,
आँखें लाल
तना सा भाल,
सामने दर्पण
लेकर खिन्न मन
खड़े हो जाओगे,
स्वयं को ठीक वैसा पाओगे।
वह प्रश्न नहीं उठाता है,
जैसे हो वैसा
नज़र आता है।

अधरों पर मुस्कान,
आनन पर सम्मान,

प्यारे से भाव
न कोई संताप,
प्रसन्न मन
सामने दर्पण,
मुद्रा मन भावन
लेकर खड़े हो जाओगे,
स्वयं को ठीक वैसा पाओगे।
दर्पण
मुद्रा गंभीर नहीं बनाता है,
जैसे हो वैसा
नज़र आता है।

हृदय में पाप
अन्य को संताप,
मलीनता के भाव
दूसरों को घाव,
ऐसी प्रकृति
कैसे हो निवृति,
पर बाहरी अपनापन
पर नहीं समर्पित मन,
मानव बाहरी सुंदरता दिखाता है,
परंतु
मन दर्पण से
कौन छुप पाता है?
दर्पण
चेंहरा दिखाता है,
जैसा हो वैसा
नज़र आता है।

अलमारी

घर के कमरे में
एक अलमारी है,
दीवार से सटी हुई
स्वस्थान पर डटी हुई।
अलमारी को
बाहर से चमकाया गया है,
सुंदर हेंडल, बेजोड़ सनमायका से
सजाया गया है,
नक्काशी की गई है,
इसे बनाने में
किसी तरह की कोताही
नहीं बरती गई है।
यह कमरे की सुंदरता
बढ़ाती है,
किसी की भी नज़र
इस पर टिके बिना
नहीं रह पाती है।
अक्सर लोग
बाहर से इसे निहारते हैं,
वाह–बाह! पुकारते हैं,
कोई बनाने वाले की
तारीफ के पुल बांधता है,
कोई इसकी तस्वीर खींच कर
घर में टांगता है।
लेकिन
इस के किबाड़
अक्सर बंद रहते हैं,
भीतर के सामान को

सहते हैं

और चुपचाप खड़े रहते हैं।
जो सामान
करता है कमरे का अपमान,
उसे अलमारी में
डाल दिया जाता है,
और कोई अनजान
उसे नहीं देख पाता है।
इस अलमारी के भीतर
सामान बेतरतीब पड़ा है,
क्या कहाँ है
हर चीज पर
प्रश्न खड़ा है,
कोई स्थान
किसी एक चीज़ के लिए
निर्धारित नहीं किया गया है,
किसी साधारण
या विशेष के लिए
कोई नाम नहीं दिया गया है।
इसलिए
इस के भीतर
कुछ खोजना
आसान नहीं है,
क्योंकि
जो सही ढंग से रखा हो
ऐसा कोई सामान नहीं है।
जो खोजता है
वह हाताश होकर
रह जाता है,

क्योंकि, वहाँ से
बंधी गठरियों के सिवा
क्या पाता है ?
गठरियाँ जो बंधी हैं
जाने कब से,
इन्हें डाला गया था इसमें
शायद तब से।
कौन इन गाँठों को खोल पाया है?
सबने सुंदर अलमारी को
बाहर से अपनाया है।
यूँ भी
बंधी हुई गठरियों
की पीड़ा सहना
आसान कहाँ होता है?
जो नहीं खोल पाता है
वह सहता है और रोता है।
इन गाँठों में
क्या है, कैसे है,
कौन जान पाता है?
बस तर्क–वितर्क करके
रह जाता है।
यूँ भी
इस अलमारी के पास जाना,
इस के हेंडल को घुमाना,
इसे खोलना, भीतर टटोलना,
क्या कहाँ है यह जानना,
इसके अस्तित्व को मानना,
इतना सुगम्य नहीं लगता
क्योंकि

जड़ सी खड़ी
भाव शून्य सी
इस अलमारी की
रुचि–अरुचि का
पता नहीं चलता।
इसलिए
हर कोई
इसे बाहर से निहारता है,
वाह–वाह पुकारता है,
और भीतर
कम ही झाँकता है,
और भीतर की अव्यवस्था को
कौन मानता है।

तुंग शिखर

दूर खड़ा, अकेला
अंबर तक फैला
जिसका नहीं पारावार
फैली कई घाटियाँ
गहराइयाँ
पर्वत की,
चोटी से उतरती ढलान,
फैलते जिसपर कई तूफान।
गरजते बादल
चमकती कड़कती बिजलियाँ
सौ–सौ बार,
लेकिन शिखर
खड़ा रहता अविचल,
क्योंकि उसे संभालता है
विशाल आधार हर पल।
यह शिखर
दूर अकेला खड़ा होता है
लेकिन विशाल आधार से
जुड़ा होता है।
और यह
हर कण से जुड़े होना
उसे महान बनाता है,
तभी तो वह
सहस्राब्दियों तक
अविचल, अटल
खड़ा रह पाता है।
और जिस दिन
वह ऐसा नहीं कर पाएगा,

विशाल आधार से
नाता टूट जाएगा,
तब वह
अविचल अंबर छूता शिखर
अपनी तुंग ऊँचाई लिए
कहाँ टिक पाएगा।
जो विशाल आधार से
जुड़ा होता है,
वहीं शिखर आकाश में
सिर उठाए
खड़ा होता है।
और जो
ऐसा नहीं कर पाता है,
वह टूट कर बिखर जाता है।

मेरी यात्रा

कैसे चलूँ मैं
काँटों पर बार–बार?
कैसे जलूँ मैं
अंगारों पर बार–बार?
कैसे गिरूँ मैं
अंधकूप की गहराइयों में
बार–बार
कैसे चढ़ूँ
शिखर की पगडंडियों पर
बार–बार?
हर बार तुमने ही
मेरे लिए पथ का निर्माण किया,
हर बार तुमने
मुझे चलने के लिए
वह रास्ता दिया,
जिस पर मुझे
लहूलुहान होकर निकलना
जलना, अंधेरों में
गिरना पड़ा।
मेरे साथ
यह सब होता रहा,
मैं स्वयं के भाग्य पर
रोता रहा।
तुमने
मेरी परीक्षा के लिए
हर बार
एक नया परीक्षा पत्र गढ़ा,
मैं हर बार

सूली पर चढ़ा?
प्रश्न भी तुम्हारे थे,
उनके उत्तर भी तुम्हारे थे,
मैं तो बस
तुम्हारे
मोह में बंधा
भावों में सधा
तुम्हारी सुविधानुसार
उत्तर खोजता रहा,
और तुम्हारे द्वारा रचे
चक्रव्यूह को
भोगता रहा।
मैंने कहाँ कभी
मुड़कर देखा?
मेरे चारों ओर खिंची
तुम्हारी रेखा,
मैंने कभी उसे
पार नहीं किया,
पर तुमने कभी
उसे महत्व नहीं दिया।
फिर भी मैं
उन बंधनों को
ढोता रहा,
चाहे स्वयं के स्वाभिमान को
खोता रहा,
नयनों को
भिगोता रहा।
मेरे सभी अधिकार
तुम्हारे थे,

मैने अपने सभी भाव
हारे थे।
मैंने जीवन से क्या पाया?
क्योंकि
मेरा पाना
मेरे बस में कहाँ था?
मेरा हर अधिकार
वहाँ था
यहाँ तुम खड़े थे।
मैंने,
तुम्हारे अहं को
विशाल बना दिया था,
अपने हक का फैसला
तुम्हारे हक में
सुना दिया था।
मेरे इस समर्पण को
तुम कहाँ समझ पाए?
तुमने तो सदा
स्वयं के गुण गाए,
स्वयं की सराहना
अन्य को उलाहना
क्या यही था तुम्हारा कर्म,
तुम नहीं समझ पाए
मेरा मर्म।
मैं तो
बार–बार
काँटों पर चलता रहा,
अंगारों पर जलता रहा,
अंधकूप की

गहराइयों में गिरा,
अपने लक्ष्य के
पथ का
न पकड़ पाया
कोई सिरा।
और आज भी
मैं
उसी तरह पड़ा हूँ,
तुम्हारे किसी रास्ते पर
कहाँ खड़ा हूँ?
पर चाहता हूँ
तुम्हारा हर मार्ग
प्रशस्त करना,
तुम्हारी हर झोली को
स्वयं के समर्पण से भरना।
और जानता हूँ
मेरा समर्पण
तुम्हारे थोथे तर्क–वितर्क से
मान्यता नहीं पाएगा,
और जगत
तुम्हारे द्वारा
स्वयं की प्रशस्ति में
गाए गए गुणों को गाएगा।
क्योंकि
स्वयं का प्रशस्ति गान
मैं कहाँ गा सकता हूँ,
बस समर्पित होकर
स्वयं में संतोष की अनुभूति
पा सकता हूँ।

अंतर

पर्वतों की ढलानों पर
फैली पगडंडियाँ
दूर–दूर तक फैले घर
वृक्षों के झुरमुटों में,
कहीं अकेले
कहीं गुटों में।
दिखते हैं छोटे–छोटे
दूर से शाँत–सुरम्य,
लेकिन दुर्गम्य।
कहाँ–कहाँ बसे हैं!
यह लोग।
देख कर यह सुंदर जीवन
आकर्षित होता मन।
लेकिन बड़ा शहर
इसकी शोभा
अद्भुत अनोखी होती है
मानव निर्मित व्यवस्थाएँ
सुंदरता पिरोती हैं,
बिजली जगमगाती है
सुविधाएँ पास बुलाती हैं,
शहर दिन रात जागता है,
प्राप्य की प्राप्ति हेतु
भागता है,
वर्षों की दूरियाँ
दिनों में नापता है।
इस भागमभाग में
स्वयं के लिए भी
समय कहाँ निकाल पाता है,

मानव, मानव न बन कर
मशीन बनकर रह जाता है।
शहर में
घर साथ–साथ होते हैं,
छत जुड़े होते हैं
दीवारें मिली होती हैं
जो एक दूसरे को
पहचानती हैं,
एक दूसरे का रंग ढंग
जानती हैं।
लेकिन
इन घरों में रहने वाले
एक दूसरे के लिए
समय कहाँ निकाल पाते हैं?
बस स्वयं के घरों में भी
वे यदा–कदा आते हैं,
खाते हैं सोते हैं
जागते ही निकल जाते हैं,
बस इस तरह
जीवन बिताते हैं।
पास के घर में
क्या होता है,
कोई हँसता है
या रोता है,
कौन किस के लिए
समय खोता है।
पर दूर बसे
गाँव में,
पर्वत पर

बादलों की छाँव में,
वृक्षों के तले
एक सुंदर जीवन पले।
यूँ तो
मानव मुश्किल से
परिवार का बोझ
उठा पाता है,
लेकिन दूसरों का दर्द बाँटने
हमेशा
सबसे आगे आता है।

वर्षा की महक

आकाश पर घुमड़ते बादल
गरजते–चमकते हैं,
फिर पानी की बूंदें
प्यासी धरती
के अधरों पर
अमृत बन कर बरसती हैं,
जिस के लिए धरती
तरसती है।
यह अमृत धारा
चराचर जगत को
नवजीवन देती है,
कृषकों के हृदय में
आनंद भर देती है।
कृषक, जो मिट्टी के साथ
मिट्टी होकर जीते हैं
फसल ज़मीन में बोते हैं,
वर्षा न होने पर
चैन से कहाँ सोते हैं।
यह बूँदें उनके लिए
एक नई सुबह लेकर आती हैं
मन में वह आनंद भर जाती हैं
जिस के लिए धरती तरसती है,
फिर पानी की बूंदे
प्यासी धरती के अधरों पर
अमृत बन कर बरसती हैं।

नदी,
जो थी सूख चली,

किसी भूखे गरीब के
पेट की तरह
कृषकाया हो गई थी,
जिस की किस्मत
न जाने कहाँ सो गई थी।
गरीब के तन से
झाँकती हड्डियों की तरह
नदी से
पत्थर झाँकने लगे थे,
जैसे भूखा अन्न माँगता है
नदी–नाले
पानी माँगने लगे थे।
मची थी हाहाकार
सुनकर पुकार
तुम चले आए,
और ऐसे आनंद के बादल छाए,
जिस के लिए
नदी तरसती है,
फिर पानी की बूँदे
प्यासी नदी के अधरों पर
अमृत बन कर बरसती है।

कोई नहीं आता

मैं
मिट्टी गूँथ कर
दीया बनाता हूँ,
रुई बुनकर बाती लगाता हूँ,
फिर इसे
थाली में सजाता हूँ।
चाहता हूँ
कोई आए
इसे जलाए
किसी देवता की
अराधना के लिए,
किसी साध्य की
साधना के लिए,
प्रयास तो करे।

पर कोई नहीं आता,
बाती को
कोई नहीं जलाता।

लक्ष्य को
कोई नहीं साधता,
मुझे
किसी बंधन में
नहीं बाँधता।

मैं
भावों को सजाता हूँ
कविता के बंध बनाता हूँ,

और फिर
शायद
पत्थरों को सुनाता हूँ।
चाहता हूँ
कोई आए
शब्दों को सुने
भावों की माला बुने,
चाहे खिले हैं काँटों में
पर इन फूलों को चुनें।
पर कोई नहीं आता
काँटों में हाथ डाल कर
फूलों को
कोई नहीं चुनता,
सुगंधित हार
कोई नहीं बुनता।

मैं
पथ सजाता हूँ,
आँखें बिछाता हूँ
फूल खिलाता हूँ
और फिर चाहता हूँ
कोई आए,
अपनी पगध्वनि से
पथ को सजाए,
अनजान से रस्ते को
अपनी महक से
महकाए।
पर कोई नहीं आता,
इस पथ को

कोई नहीं सजाता,
मैं स्वयं द्वारा
सजाए गए
सबके लिए अनजान रस्ते पर
किसी को नहीं पाता।

मेरी कविताएँ

मेरा मन
बहुत विशाल है।
बहुत गहरा
इसमें समा सकतें हैं
कई रंग
कई रूप
कई हास
कई उदासियाँ
कई खुशियाँ
कई गम
कई आनंद
कई कराहें
और न जाने क्या क्या
कहाँ कहाँ रुका है,
जिन पर भावों का समुद्र
टिका है।
हृदय की अतल गहराईयों में।
न जाने
कब, कैसे
कौन से भावों का
ज्वालामुखी फटता है,
वैसा ही रंग
कागजों पर उतरता है,
कोई तस्वीर बनाता है
शब्दों के चित्र सजाता है।
और
परम प्रसव पीड़ा से

जन्म लेती है
वैसे ही रंग रूप लिए
वैसे ही भाव लिए
कोई कविता,
जैसे उतरती है
सागर में समाने को
कोई सरिता।
लेकिन
यह शब्द
शब्दों में समाहित अर्थ
कौन समझा पाता है?
बस सुविधानुसार
अनुमान लगाता है।
मेरे हृदय की गहराई का
मेरा हृदय
जो बहुत विशाल है
बहुत गहरा
जिसमें समा सकते हैं
कई रंग
कई रूप
कई हास
कई उदासियाँ
कई खुशियाँ
कई गम
कई आनंद
कई कराह
और न जाने क्या क्या?

भाग–3

गज़लों को लिपिबद्ध करने हेतु लेखक धन्यवादी है :–

1. सैयद तसनीम इकबाल नाज़की (R.O.,S.I.E.)
2. चौ० ताहिरा प्रवीन (R.O.,S.I.E.)
3. डॉ० राबिया नसीम मुगल (R.O.,S.I.E.)

गज़ल–12

लाया हूँ चुनकर वो तिनके आशियाने के लिए,
बिजलियाँ बेताब हैं जिनको जलाने के लिए,

और झटक कर डालियों से गोदी में भर लाए हम
आते हैं काम फ़ूल जो अर्थी सजाने के लिए,

गा के हमने इस अंजुमन में इल्म गर्क कर दिया
मालुम न था यह महफ़िल नहीं है ऐसे तराने के लिए।

जरूरी नहीं कि उतरे हर तहरीर सुनहरे कागज़ों पे
किस्सा यह तो छोड़ दें हम इस ज़माने के लिए।

वादा खिलाफी पे पूछा हँस के वो कहने लगे
साकी को भी रिंद चाहिए अपने मयखाने के लिए।

غزل-12

لایا ہوں چُن کر وہ تنکے آشیانے کے لئے
بجلیاں بے تاب ہیں جن کو جلانے کے لئے

اور جھٹک کر ڈالیوں سے گودی میں بھر لائے ہم
آتے ہیں کام پھول جو ارتھی سجانے کے لئے

گا کے ہم نے اِس انجمن میں علم غرق کر دیا
معلوم نہ تھا یہ محفل نہیں ہے ایسے ترانے کے لئے

ضروری نہیں کہ اُترے ہر تحریر سُنہرے کاغذوں پہ
قصہ یہ تو چھوڑ دیں ہم اِس زمانے کے لئے

وعدہ خلافی پہ پوچھا ہم نے ہنس کے وہ کہنے لگے
ساقی کو بھی رند چاہیۓ اپنے مہ خانے کے لئے

गज़ल-11

निगाहे खंजर से 'फ़लक' अब हम डरेंगे क्या,

पहले ही हम जबा हैं अब और मेरेंगे क्या,

चाहें तो चाँद को जमीं पे ले आएँ हम

पर मुफलिसी में दो का हम करेंगे क्या?

उनको तो मिली चार जमीं पे अब तलक,

ज़न्नत की हूरों के लिए वो आहें भरेंगे क्या?

और पा के बेपर्दा हूरों को ज़न्नत में वो तो खुश हैं

पाया था जो पहले फतवा अब उसका करेंगे क्या?

غزل-11

نگاہِ خنجر سے فلک اب ہم ڈریں گے کیا
پہلے ہی ہم زبح ہیں اب اور مریں گے کیا

چاہیں تو چاند کو زمین پر لے آئیں ہم
پر سوچتے ہیں دو کا ہم کریں گے کیا

اُن کو تو ملی چار زمیں پہ اب تلک
جنت کی حوروں کے لئے وہ آہیں بھریں گے کیا

اور پا کے بے پردہ حوروں کو جنت میں وہ تو خوش ہیں
جو پایا تھا پہلے فتویٰ اب اُس کا کریں گے کیا۔

☆☆☆

गज़ल-10

गुलशन में है बहार और गुल हैं बेशुमार,

यह वो बाग है जिसमें कोई बुलबुल नहीं गाती।

वो तो करते हैं वादा ख़्वाबों में आने का,

पर इश्क में कम्बख़्त हमें नींद नहीं आती।

भेजते हैं मेरे रकीब मेरे घर में कई बार,

पर ज़ालिम बेबफा कभी खुद नहीं आती।

हम भी नज़रें जमाए बैठे हैं उसकी चौखट पर,

लानत है इस नज़र को जो कहीं ओर नहीं जाती।

غزل-10

گلشن میں ہے بہار اور گل ہے بے شمار
یہ باغ ہے جس میں کوئی بلبل نہیں گاتی

وہ تو کرتے ہیں وعدہ خوابوں میں آنے کا
پر عشق میں کم بخت ہمیں نیند نہیں آتی

بھیجتے ہیں میرے رقیب میرے گھر میں کئی بار
پر ظالم بے وفا کبھی خود نہیں آتا

ہم بھی نظر جمائے بیٹھیں ہیں اُسکی چوکھٹ پر
لعنت ہے اِس نظر کو جو کہیں اور نہیں جاتی
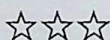
गज़ल–9

मदहोश है ज़माना न होश में हम,

आँखें न हुईं तुम्हारी पैमाना हो गया।

राह–ए–इश्क में हैं और भी हैं इस जहान में,

दुश्मन क्यों मेरा यह ज़माना हो गया?

हुरें मिलेगी जन्नत में अब इससे नहीं सबब,

घर जब से हमारा मयख़ाना हो गया।

रखा था छुपा के मय को जुल्मद कदे में हमने,

मअशक़–ए–शोख रिन्द का निशाना हो गया।

खून–ए–ज़िगर है फैला हर एक शेअर,

वो पढ़ के बोले वाह क्या तराना हो गया।

इश्क–ए–जुनून कहे किससे यह 'फ़लक'

जाए जान वो कहे अफसाना हो गया।

غزل-9

مدہوش ہے زمانہ نہ ہوش میں ہیں ہم
آنکھیں نہ ہوئی تمہاری پیمانہ ہو گیا

راہِ عشق ہیں اور بھی ہیں اس جہاں میں
دشمن کیوں میرا یہ زمانہ ہو گیا

حوریں ملیں گی جنت میں اب اس سے نہیں سبب
گھر جب سے ہمارا مہ خانہ ہو گیا

رکھا تھا چھپا کے مئے کو ظلمت کدے میں ہم نے
معشوق شوخ رندی کا نشانہ ہو گیا

خونِ جگر ہے پھیلا ہر اک شعر میں
پڑھ کے بولے وہ کیا ترانہ ہو گیا

عشقِ جنون کہے کس سے یہ فلک
جائے جان وہ کہیں افسانہ ہو گیا۔
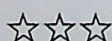
गज़ल–8

मेरे इश्क की वो मुझको सज़ा देता है,
मेरे दर्द को वो गज़ल बना देता है।
मैं तो ठहरना चाहता हूँ अब किसी मोड़ पर,
हर शब इक नया फरमान सुना देता है।

यूँ तो छोड़ आया हूँ मैं जिनको चौराहे पर,
उन यादों को वो मेरा पता देता है।
वादे हैं तो टूटेंगे इल्म है मुझे,
चाहूँ निभाना भी तो निभाने कहाँ देता है।

रखी थी यहाँ कभी उनकी तस्वीर हमने,
वो ज़ालिम अब ज़ख्म भी वहाँ देता है।

गज़ल–7

दिन में खोया रहता है रात को जागा करता है,
मुझसे पूछो यारो तुम यह चाँद दिवाना लगता है।
महफ़िल में खोया रहता है तन्हा बातें करता है,
मुझसे पूछो यारो तुम वो आशिक पुराना लगता है।
पास न जब मेरे वो आग बरसती है सावन में,
दिलवर हो गर पास कोई पतझड़ भी सुहाना लगता है।
शमा जब रोशन होती है वो महफ़िल में आ जाता है,
और जलाता है खुद को कोई परवाना लगता है।
मौत मिलेगी मंज़िल की जगह फिर भी आहें भरता है,
रस्ते का जिसको इल्म नहीं वो राही अनजाना लगता है।

غزل-8

میرے عشق کی وہ مجھ کو سزا دیتا ہے
میرے درد کو وہ غزل بنا دیتا ہے

میں تو ٹھہرنا چاہتا ہوں اب کسی موڑ پر
ہر شب اک نیا فرمان سُنا دیتا ہے

یوں تو چھوڑ آیا ہوں جن کو چوراہے پر
اُن یادوں کو وہ میرا پتہ دیتا ہے

وعدے ہیں تو ٹوٹیں گے علم ہے مجھے
چاہوں نبھانا بھی تو نبھانے کہاں دیتا ہے

رکھی تھی یہاں کبھی اُن کی تصویر ہم نے
وہ ظالم اب زخم بھی وہاں دیتا ہے۔

गज़ल–7

दिन में खोया रहता है रात को जागा करता है,
मुझसे पूछो यारो तुम यह चाँद दिवाना लगता है।
महफ़िल में खोया रहता है तन्हा बातें करता है,
मुझसे पूछो यारो तुम वो आशिक पुराना लगता है।
पास न जब मेरे वो आग बरसती है सावन में,
दिलवर हो गर पास कोई पतझड़ भी सुहाना लगता है।
शमा जब रोशन होती है वो महफ़िल में आ जाता है,
और जलाता है खुद को कोई परवाना लगता है।
मौत मिलेगी मंज़िल की जगह फिर भी आहें भरता है,
रस्ते का जिसको इल्म नहीं वो राही अनजाना लगता है।

غزل-7

دن میں کھویا رہتا ہے رات کو جاگا کرتا ہے
مجھ سے پوچھو یارو تم یہ چاند دیوانہ لگتا ہے

محفل میں کھویا رہتا ہے تنہا باتیں کرتا ہے
مجھ سے پوچھو یارو تم وہ عاشق پُرانا لگتا ہے

پاس نہ جب میرے وہ آگ برستی ہے ساون میں
دلبر ہو گر پاس کوئی پت جھڑ بھی سُہانا لگتا ہے

شمع جب روشن ہوتی ہے وہ محفل میں آ جاتا ہے
اور جلاتا ہے خود کو کوئی پروانہ لگتا ہے

موت ملے گی منزل کی جگہ پھر بھی آہیں بھرتا ہے
رستے کا جس کو علم نہیں وہ راہی انجانا لگتا ہے۔
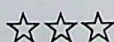
गज़ल–6

कतरा–ए–अश्क बदगुमा चेहरा नासाज तबियत क्यों है?
है इश्क तुझको तो फिर यह नामूसियत क्यों है?
रखा है सिर मजलिस में मशहदे पर तूने,
कत्ल होगा तेरा, दूर तुझसे यह हकीकत क्यों है?

मारा पत्थर जो मजनूँ पर वो मुस्कुराकर बोला,
नासूर चाहिए फ़ना होने को यह जराहत क्यों है?
और तेरे दर पे मुझे ज़िन्दगी की नवाजिश से क्या,
साँस लेने की भी या रब यह मुसीबत क्यों है?
ज़िगर से निकलते खूँ को यहाँ देखता है कौन,
'फ़लक' इस शहर में उल्फ़त की यह रिवायत क्यों है?

غزل-6

قطرۂ اشک بدگماں چہرہ ناساز طبیت کیوں ہے؟
ہے عشق تجھ کو تو پھر یہ ناموسیت کیوں ہے؟

رکھا ہے مجلس میں مشہدے پر تو نے
قتل ہوگا تیرا، دور تجھ سے یہ حقیقت کیوں ہے؟

مارا پتھر جو مجنوں پر وہ مُسکرا کر بولا
ناسور چاہیے فنا ہونے کو یہ جراحت کیوں ہے؟

اور تیرے در پہ مجھے زندگی کی نوازش سے کیا؟
سانس لینے کی بھی یا رب یہ مصیبت کیوں ہے؟

جگر سے نکلتے خوں کو یہاں دیکھتا ہے کیوں؟
فلک اس شہر میں اُلفت کی یہ روایت کیوں ہے؟

गज़ल–5

कोई मेहरम दवा नहीं लाता,
वज़्म–ए–सुखन में भी अब कोई नहीं गाता,
हम तो आज़ार हैं अपनी फुर्सत से,
कि घर में कोई वदख्वाह नहीं आता।

थी रौनक जिस शहर में कभी इतनी,
अब कोई भूले से भी वहाँ नहीं जाता,
हम तो फिर भी ख्यालों में बुला लेते हैं,
उनको तो शायद वो भी नहीं आता।

यूँ तो आसमाँ में तारों की महफिल है,
पर रश्क में सरोवर यहाँ हर दिल है,
चाँदनी आएगी कहाँ से रौशन करने,
'फलक' पे कोई चाँद नज़र नहीं आता।

यूँ तो अब मौसमे बहाराँ है,
पर इस बाग में खिजाँ का नज़ारा है,
कोई बागवाँ संवारने आए कैसे,

लाने उसे घर तक कोई नहीं आता,

परदे से देखें हम नज़ारे कैसे,

चाहें भी तो खुद को संवारें कैसे,

देखना चाहते हैं अपनी सूरत लेकिन,

हमें आइना नज़र नहीं आता।

غزل-5

کوئی محرم دوا نہیں لاتا
بزمِ سخن میں بھی اب کوئی نہیں گاتا
ہم تو آزار ہیں اپنی فرصت سے
کہ گھر میں کوئی بدخواہ نہیں آتا

تھی رونق جس شہر میں کبھی اتنی
اب کوئی بھولے سے بھی وہاں نہیں جاتا
ہم تو پھر بھی خیالوں میں بلا لیتے ہیں
اُن کو تو شاید وہ بھی نہیں آتا

یوں تو اب موسمِ بہاراں ہے
پراس باغ میں خزاں کا نظارا ہے
کوئی باغباں سنوارنے آئے کیسے
لانے اُسے گھر تک کوئی نہیں جاتا

پردے سے دیکھیں ہم نظارے کیسے
چاہے بھی تو خود کو سنوارے کیسے
دیکھنا چاہتے ہیں اپنی صورت لیکن
ہمیں آئینہ نظر نہیں آتا

ग़ज़ल–4

याद तेरी के साए घने थे
मैं नहीं सोया रात भर,
फिर भी हमने अपने ग़म को
मय में डुबोया रात भर।

नींद मेरी थी ख्वाब मेरे थे
अश्क आहें सब मेरे थे,
तू क्या जाने तेरे पीछे
क्या कुछ खोया रात भर।

हिज्र की शामें फुर्कत की रातें
मेरी वफ़ा का हश्र है यह,
इस चेहरे को इन अश्कों से
कितना धोया रात भर।

घास पे गिरे यह मोती
तुम्हें शबनम के कतरे दिखते हैं,
गौर से देखो यारो तुम
'फ़लक' तो नहीं रोया रात भर।

غزل-4

یاد تیری کے سائے گھنے تھے
میں نہیں سویا رات بھر
پھر بھی ہم نے اپنے غم کو
مہ میں ڈبویا رات بھر

نیند میری تھی خواب میرے تھے
اشک آہیں سب میرے تھے
تو کیا جانے تیرے پیچھے
کیا کچھ کھویا رات بھر

ہجر کی شامیں فرقت کی راتیں
میری وفا کا حشر ہے یہ
اس چہرے کو ان اشکوں سے
کتنا دھویا رات بھر

گھاس پہ گرے یہ موتی
تمہیں شبنم کے قطرے دکھتے ہیں
غور سے دیکھو یاروں تم
فلک تو نہیں رویا رات بھر

गज़ल-3

तुझसे मिलते ही नज़रों को चुरा लेते हैं हम,
और शाम ढलते ही तेरी यादों को बुला लेते हैं हम।
दिन भर मयखाने में न पीने की कसमें खाते हैं,
और शाम ढलते ही घर को मयखाना बना लेते हैं हम।

तुमसे मिलके भी न मिलने का ग़म सहते हैं हम,
तेरी वज़्म में आकर भी तन्हा रहते हैं हम।
यूँ तो दर्दे निहॉ भी है और शायराना अन्दाज़ है मेरा,
इसलिए गुनगुनाते हैं और खुद को सुना लेते हैं हम।

शब–ए–फिराक में दिल को शमा बना लेते हैं हम,
अंधेरी रातों में चिरागों को जला लेते हैं हम।
यह जलता हुआ घर इस 'फ़लक' का ही है,
रोशनी के लिए थोड़ी आग खुद ही लगा देते हैं हम।

غزل-3

تجھ سے ملتے ہی نظروں کو چُرا لیتے ہیں ہم
اور شام ڈھلتے ہی تیری یادوں کو بُلا لیتے ہیں ہم

دن بھر مہ خانے میں نہ پینے کی قسمیں کھاتے ہیں
اور شام ڈھلتے ہی گھر کو مہ خانہ بنا لیتے ہیں ہم

تجھ سے مل کے بھی نہ ملنے کا غم سہتے ہیں ہم
تیری بزم میں آکر بھی تنہا رہتے ہیں ہم

یوں تو دردِ نہاں بھی سے اور شاعرانہ انداز ہے میرا
اس لیے گُنگناتے ہیں اور خود کو سُنا لیتے ہیں ہم

شبِ فراق میں دل کو شمع بنا لیتے ہیں ہم
اندھیری راتوں میں چراغوں کو جلا لیتے ہیں ہم

یہ جلتا ہوا گھر اس فلک کا ہی ہے
روشنی کے لیئے تھوڑی آگ خود ہی لگا دیتے ہیں ہم

☆☆☆

ग़ज़ल–2

शब–ए–ग़म में हमने जश्न–ए–मोहब्बत
आज मनाया जी भर के,
तुझको अपने ख्यालों में बुलाकर
पास बिठाया जी भर के।

हम हैं रिन्दी हमको तलब थी
जो न मिली तेरी आँखो से,
मयख़ाने में जाकर बैठे
उसे आज़माया जी भर के।

उल्फ़त की रस्में खा कर कस्में
तुम तो निभाना भूल गए,
फिर भी हमने उन रस्मों को
हर बार निभाया जी भर के।

सख्त जान है इक बार मरकर
ग़म गलत न कर पाते,
मरने को पल–पल अब तक हमने
रूह को मनाया जी भर के।

रस्तों से 'फ़लक' वाकिफ़ तो था
पर अंधेरा बहुत था रस्ते पर,
अपने दिल को शमा बनाकर
आज जलाया जी भर के।

غزل-2

شبِ غم میں ہم نے جشنِ محبت آج منایا جی بھر کے
تجھ کو اپنے خیالوں میں بُلا کر پاس بیٹھایا جی بھر کے

ہم ہیں رندی ہم کو طلب تھی جو نہ ملی تیری آنکھوں سے
مہ خانے میں جا کر بیٹھے اُسے آزمایا جی بھر کے

اُلفت کی رسمیں کھا کر قسمیں تم تو نبھانا بھول گئے
پھر بھی ہم نے اُن رسموں کو ہر بار نبھایا جی بھر کے

سخت جان ہیں اک بار مر کر غم غلط نہ کر پاتے
مرنے کو پل پل اب تک ہم نے رُوح کو منایا جی بھر کے

رستوں سے فلک واقف تو تھا پر اندھیرا بہت تھا رستے پر
اپنے دل کو شمع بنا کر آج جلایا جی بھر کے۔

गज़ल–1

मेरी मक्तूवियत तुम्हें फ़साना लगाता है,

हमें तो हिजाव में कैद सारा ज़माना लगता है।

और जब से देखा है नूर–ए–इलाही या रब,

अब तो अपना चेहरा बेगाना लगता है।

आस्ताँ–ए–जानम पे नासुबूरी का आलम है,

अब तो दैर–ओ–हरम में अपना ठिकाना लगता है।

इब्तदा–ए–इश्क में गुजरे हैं गुल–ओ–आवशार से,

मेरे महबूब का जन्नत में आशियाना लगता है।

मयखाने के तस्ब्बुर से ही चेहरे पे आ जाती है रौनक,

'फ़लक' रिन्द कोई आशकाना लगता है।

غزل-1

میری مقطوبیت تمہیں فسانہ لگتا ہے
ہمیں تو حجاب میں قید سارا زمانہ لگتا ہے۔

اور جب سے دیکھا ہے نورِ الٰہی یا رب
اب تو اپنا چہرہ بے گانہ لگتا ہے۔

آستاںِ جانم پہ ناصبوری کا عالم ہے
اب تو دیر و حرم میں ہی اپنا ٹھیکانا لگتا ہے۔

ابتداِ عشق میں گزرے ہیں گل و آشار سے
میرے محبوب کا جنت میں آشیانہ لگتا ہے۔

مہ خانے کے تصور سے ہی چہرے پہ آ جاتی ہے رونق
فلک رند کوئی عاشقانہ لگتا ہے۔